सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49 ; अंक : 9
दिसम्बर 2016

प्रकाशन तिथि : 01.12.2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.

अमृतकण

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्युमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।

हे अर्जुन ! मेरे अनन्यशरण होकर स्त्री, वैश्य और शूद्रगण तथा चाण्डालादि पापयोनिवाले भी निश्चय परमगति को प्राप्त हो हैं। फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण तथा राजर्षि (मेरे शरणागत) भक्तों की तो बात ही क्या है। अतएव तुम इस सुखरहित और अनित्य मनुष्यजन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

तुम मुझमें मन रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार मेरे शरण होकर आत्मा को मुझमें समाहित करके तुम मुझको ही प्राप्त होओगे।

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।

सब गोपनीयों में भी परम गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन तुम फिर सुनो। तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसीलिए तुम्हारे हित की बात बताता हूँ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

हे अर्जुन! तुम केवल मुझमें ही मन रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। ऐसा करने पर तुम मुझको ही प्राप्त होओगे। यह मैं तुम्हें सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे (बहुत ही) प्यारे हो। सब धर्मों (दूसरे सब तरह के आश्रयों) को त्यागकर एकमात्र मेरी ही अनन्य-शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से सर्वथा छुड़ा दूँगा। तुम चिन्ता न करो।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 9

दिसम्बर
2016

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योंमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

नमामि हरिं परम

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।
श्रीमद्‌भागवत् 12/13/13

अर्थात्

जिनके नाम का संकीर्तन सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है,
जिनको किया गया प्रणाम सम्पूर्ण दु:खों को शान्त कर देता है,
उस परमतत्त्व स्वरूप श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 10
3. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह 12
4. योग साधना का आधार–स्वस्थ जीवन– डॉ. के.कुमार 16
5. सांसारिक कामनायें– प्रो. ऋषिराम शर्मा 21
6. वशिष्ट ऋषि का भुशुण्ड से पूर्व कालिका वृत्तान्त एवं आयु सम्बन्धी 25
7. टोडरपुर का वार्षिकोत्सव सम्पन्न 27
8. तजि ममता मद मान– कृष्ण कुमार पाण्डेय 29
9. मनुष्य जीवन की उपादेयता– अशोक शर्मा 31
10. तंगदस्ती–गरीबी– डॉ. पं रामगोपाल द्विवेदी कव्वाल 35
11. पूज्य गुरुदेव जी के चरणों में अर्पित– डॉ. रामगोपाल द्विवेदी 36
12. योगसिद्धियाँ और उनकी प्राप्ति– श्री अमीरचन्द्र शास्त्री 37

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

हमारा कर्माशय

योगीराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

कर्माशय शब्द का अर्थ है **'शुक्ला शुक्ल कर्मणाम आशय इति कर्माशय'**। अर्थात् भोग पर्यन्त जिसमें अच्छे व बुरे कर्मों का संचय रहा करता है उसी स्थान का नाम कर्माशय है। कर्माशय ही समय–समय पर प्रारब्धानुसार अच्छे–बुरे कर्मों का भोग मनुष्य को दिया करता है। भगवान श्री पतंजलि देवजी ने कर्माशय को दो भागों में विभाजित करके उसका स्वरूप समझाया है और मनुष्य मात्र को यह शुभ प्रेरणा दी है कि यदि वह तीव्र संकल्प से चाहे तो इस ही जीवन में कुछ थोड़े से साधनों के द्वारा अपने आप को अपूर्व परिवर्तित कर सकता है। भगवान पतंजलि देवजी कहते हैं—संस्कार बशात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से उत्पन्न हुआ कर्माशय तीव्र साधनों के संयोग से इस ही जन्म में अपने पाप पुण्यात्मक भोग को दे दिया करता है।

इस ही का नाम **'दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय'** कहा है जो व्यक्ति कर्म मीमांसा के सिद्धान्त को रूढ़िवाद और न कुछ मानकर अपने आपको हतोत्साह किये रहते हैं उनके लिये यह अनोखा चमत्कारिक साधन है कि वह अपने कर्माशय को **'दृष्ट जन्म संवेदनीय'** जिसका अर्थ है कि जो कर्म इसी जन्म में किये जायें और इनमें तीव्र संवेग होने के कारण मनुष्य इस ही जन्म में उनका उपभोक्ता हो जाये। जो कर्माशय **'अदृष्ट जन्म संवेदनीय'** अर्थात् अन्यान्य दूसरे जन्मों में फल देने वाला है। उसके लिए तो हर मनुष्य यह कह ही सकता है कि क्या कहा जा सकता—ये दुःख या सुख हमारे कृत कर्मों का उपभोग रूप फल है क्योंकि उसके सामने कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिससे कि वह जान सके कि यह 'भोग' हमारे उन–उन कृत कर्मों का फल है। इसलिए 'अदृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय पर मनुष्य सहसा कभी विश्वास करने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य मन नकद धर्मी है। मन हर समय प्रत्यक्षानुभूति का उपासक बना रहता है। वह उसी सिद्धान्त को सत्य मानना चाहता है कि जिसके परिणाम को वह निर्णयात्मक रूप से स्पष्ट जान ले इसलिए कर्म

मीमांसा के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले साधक के लिए यह उत्तम साधन है कि वह तीव्र संवेगन दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार कर ले और उसके परिणाम को भी इस ही जन्म में देख डाले। भगवान पतंजलि देव ने दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करने का निर्देश योग दर्शन में किया है।

'क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टा–दृष्ट जन्म वेदनीयः' इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए व्यास देव जी ने अपने विचार व्यक्त किये। अर्थात् पाप पुण्यात्मक कर्माशय काम, क्रोध, मोह, क्रोध से उत्पन्न हुआ दृष्ट जन्म संवेदनीय (अर्थात् इसी जन्म में किये हुए कर्मों का फल इसी जन्म में देने वाला तैयार हो जाया करता है। पुण्यात्मक कर्माशय भी तैयार हो जाता है। पुण्यात्मक कर्माशय तैयार करने के लिए साधक को निम्नांकित उपायों का अवलम्ब लेना पड़ता है। तीव्र संवेग के द्वारा किया हुआ तप एवं तीव्र संवेग, (गाढ़ी लगन के साथ लगायी हुई समाधि) बहुत जल्दी ही इस दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार कर देते हैं इसके अतिरिक्त ईश्वर देवता महर्षि आदि महानुभावों की आराधना से दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय तैयार हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त विश्वासोपगत महानुभावों में या तपस्वी लोगों में बार–बार किया हुआ उपकार पाप मूलक दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करके उसके फल को देने वाला बन जाता है। इसके उदाहरण में भगवान व्यास देव ने नदीश्वर एवं महाराजा नहुष के उदाहरण लिखे हैं। जिस प्रकार नदीश्वर अपना दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय का तात्कालिक भोग उपस्थित हो जाने के कारण श्री नदीश्वर जी मनुष्य योनि को छोड़कर देवयोनि में बदल गये और राजा नहुष देवताओं का राजा हो जाने के बाद भी अहंकारविष्ट रहा और अगस्तादियों के द्वारा शाप पाकर सर्पयोनि को प्राप्त हो गया। ये उसके अत्यन्त अहंकार पूर्ण दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय का फल था।

जिस प्रकार से भगवान व्यास देव ने उपरोक्त दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय को तैयार करने के चार या पाँच उपायों का अपने भाष्य में वर्णन करने का जिक्र किया है उसको हम अपने इस लेख में सोदाहरण समझाकर स्पष्ट कर देना चाहते हैं ताकि कोई भी साधक उत्साहहीन न होकर अपने आपको परम श्रेयाभिमुख कर सके। श्री व्यास देवजी ने कहा–

''तत्र तीव्र संवेग न मन्त्र तपः समाधिभिर्निर्वतित'' यह तीन साधन हैं जो अपनी साधना एवं कर्त्तव्य पर निर्धारित हैं, साधक तीन प्रकार के हुआ करते हैं। मृदु संवेग अर्थात्

बीच की लगन वाला और तीव्र संवेग इसका अर्थ है बहुत ही उत्कृष्ट लगन वाला। साधकों के मृदु मध्य और तीव्र संवेग तो होते ही हैं किन्तु साधन भी उनको अपनी लगन के अनुरूप मिल जाये तभी वह साधना की पराकाष्ठा को पा सकते हैं। यदि किसी मृदु संवेग वाले साधक को कोई अधिमात्र उपाय की साधना मिल गई तो वह उत्साहहीन होकर आगे नहीं बढ़ सकेगा, उस साधक को वह साधना इतनी भार रूप दिखलाई देगी जिस प्रकार प्राइमरी स्कूल के किसी बच्चे को डिग्री कॉलेज की शिक्षायें व्यर्थ भार रूप दिखलाई दिया करती हैं। इसलिए साधन भी साधक के अनुरूप होना चाहिए, अन्यथा साधक जहाँ का तहाँ रह जायेगा, व अपनी प्रगति को ऊँची नहीं बढ़ा सकेगा, भगवान व्यास देव जी के दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करने के लिए और उसके सद्य परिपचन के लिए पाँच प्रमुख उपायों का वर्णन किया है। उनमें से पहला साधन मंत्र का जप, अर्थात् तीव्र लगन के साथ स्वाध्याय संलग्न हो जाना, श्री व्यास देवजी ने स्वाध्याय के दो रूप बतलाये हैं।

प्रणचादि पवित्राना जपः स्वाध्याय मोक्ष शास्त्राणां मध्ययनं वा स्वाध्यायः। अर्थात् परमात्मा के पवित्र नाम ओंकारादियों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है या मोक्ष फलप्रद श्री मद्भगवद् गीता, उपनिषद, शिव सहस्त्र नाम विष्णु सहस्त्र नाम आदि स्रोतों का पाठ करना भी स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय का फल भगवान श्री पतंजली देव जी अपने योग दर्शन में इस प्रकार बतलाते हैं।

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।। अर्थात् अनवरत स्वाध्याय करने से मनुष्य अवश्य ही इष्ट देव की कृपा का लाभ करता है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्रीव्यास देव जी भी इस सिद्धान्त का पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण करते हैं।

देवा, ऋषयः, सिद्धश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शन गच्छति, अर्थात् देवता लोग, ऋषि लोग और सिद्ध महापुरुष स्वाध्याय शील व्यक्ति की आँखों के सामने जाया करते हैं और उनके कार्य कर दिया करते हैं।

स्वाध्याय के साथ तप का सम्मिश्रण और कर दिया जाये तो सोने पर सुहागे वाली बात बन जाया करती है। तप और स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति जल्दी ही निःश्रेयस भागी बन जाता है।

तप की साधना

भगवान पतंजलि देव ने अपने योग सूत्र में द्वन्द्व सहनम तपः कह करके तप का लक्षण

किया। द्वन्द्व सहन का अर्थ है सर्दी गर्मी भूख प्यास आदि के जोड़े को सहन करना, द्वन्द्वों को प्राप्त करके धीर पुरुष विचलित नहीं होते, तप का अंतिम फल भगवान पतंजलि देव ने इस सूत्र में किया है–

कायेन्द्रिय सिद्धिर शुद्धि क्षयात्तपस:।।

अर्थात्–तप के द्वारा अशुद्धि नाश हो जाने पर कायिक और इन्द्रिय सिद्धि उपलब्ध होती है। व्यास जी के अनुसार उत्तरोत्तर बढ़ाया हुआ तप अशुद्धि के आवरण रूप मल को नष्ट कर देता है और आवरण भंग हो जाने पर कायिक सिद्धि अणिमादि और ऐन्द्रिय सिद्धि दूर–दर्शन, दूर श्रवण आदि मनुष्य को स्वभाव से ही प्राप्त होती है। आज–कल कलिकाल के जमाने में भी तपस्वियों के इस प्रकार के परिणाम बिल्कुल देखने में आते हैं। मुझे इस संदर्भ में कायस्थ जाति के अंदर जन्म लेने वाले एक तपस्वी बालक की सच्ची घटना का स्मरण आया। सन् 1941 में आगरा कॉलेज में ओम प्रकाश नाम का एक कायस्थ बच्चा शिक्षा प्राप्त करता था। श्री कृष्ण दर्शन की तीव्र लगन जाग्रत हो गयी। और वह कॉलेज की शिक्षा छोड़कर श्रीकृष्ण दर्शनार्थ श्री धाम वृंदावन को चला गया, वृंदावन में जाकर के उसने गुरुकुल भूमि के पीछे श्री यमुना जी के तट पर एक कदम वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी भूख प्यास को सहन करके तीव्रतम तपश्चर्या आरंभ की। वह बालक अड़सठ दिन जीवित रहा। श्री वृंदावन के गोस्वामियों ने उसकी जीवनी पर एक पुस्तक लिखी है उसमें उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया है। साठ दिन की तीव्र पतश्चर्या के बाद उसको स्वभाव से ही दूरदर्शन और दूर श्रवण की योग्यता प्राप्त हो गयी थी और अपने तीव्रतम स्वाध्याय से उसको स्थानीय सिद्धों के दर्शन भी प्राप्त हुये। महाराजा उत्तानपाद के बालक ध्रुव ने घनघोर जंगल में जाकर नारद मुनि से मंत्रोपदेश पाकर के तीव्रतम तपश्चर्या और स्वाध्याय आरम्भ किया जिसके परिणामस्वरूप वह इष्टदेव भगवान नारायण के दर्शन प्राप्त करके कृत कृत्य होगया। जिस समय उसकी तपश्चर्या और स्वाध्याय से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ने उसको वरदान देने की इच्छा प्रकट की तो उसने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि प्रभो मैं राज्य पाने की इच्छा से तपश्चर्या में लगा था और अकस्मात् मैंने आपको पा लिया। कॉंच को ढूँढने वाला मैं आपको दिव्य रत्न के रूप में पा गया। हे स्वामि अब मैं कृतार्थ हो गया हूँ। मुझे अब वरदान की आवश्यकता नहीं है, यह ध्रुव के तीव्रतम तप और स्वाध्याय का उत्कृष्ट परिणाम था। श्री व्यास देवजी ने दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करने का तीसरा साधन

समाधि बतलाया है।

समाधिः—समाधि में उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वृत्तियों का उदय हुआ करता है सर्वांधता का नाश होता है और एकाग्रता का उदय होता है, मनुष्य के चित्त का यही समाधि परिणाम है। इसका स्पष्टीकरण पतंजलि देव ने इस प्रकार किया है। अर्थात् सर्वांधता का नाश होता है और एकाग्रता का उदय होता है, यही चित्त का समाधि परिणाम है। समाधि में साधक का चित्त क्योंकि विवेक ख्याति की ओर हुआ करता है और वह उत्तरोत्तर समझता चला जाता है। इसलिए सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी उस योगी का पुण्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है और उसका फल यह निकलता है, प्रतिदिन उसके क्लेशक्षय हो जाते हैं और दृष्ट जन्म संवेदनीय एक उज्जवल कर्माशय तैयार हो जाता है। जो उस योगी को अपना उत्कृष्ट परिणाम तत्काल दिखा दिया करता है।

भारतवर्ष के इतिहास में इस प्रकार के योगियों के उदाहरण बहुत काफी मात्रा में मिलते हैं। गोपीचन्द्र भृर्तहरी का अमृत लाभ करना समाधि जनितों दृष्टी जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय का ही उज्जवल परिणाम था, उनके समान ही और भी भारत वर्ष के योगी हैं जो समाधि के बल से अपने पुण्य अपने पुष्य प्रारब्ध का भुगतान करके अजरत्व एवं अमरत्व लाभ कर चुके हैं। योगी अपनी साधना के बल से जब कूटस्थ स्थिति में जाया करता है तो वह संसार के विकारों में जाया करता है तो वह संसार के विकारों से बिल्कुल परे हो जाया करता है उसके कर्म–अकर्म के रूप में बदल जाया करते हैं। वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता, खाता हुआ भी नहीं खाता, पीता हुआ भी नहीं पीता, सोता हुआ भी नहीं सोता, यही इसकी कूटस्थ स्थिति है, जो बिल्कुल विकार रहित हुआ करती है, इस विषय को स्पष्ट करते हुए अखिल लोक पावन जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने श्री मद्‌भागवद्‌गीता के तीसरे अध्याय में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जो मनुष्य आत्म संतुष्ट है और अपने आप में ही संतुष्ट है, उसका संसार में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता है वह कोई कार्य करे या न करे इसका प्राणी मात्र में कोई अर्थ व्यापार नहीं रहता। ऐसे कूटस्थ योगी पर कोई भी कर्मफल लागू नहीं होता।

हमारे शास्त्रों में चार प्रकार का कर्म कलाप कहा गया है उनमें से कुछ कर्म तो इस प्रकार के होते हैं, जिनको हम पाप के कर्म कह सकते हैं, कुछ पुण्य कर्म कहे जाते हैं, कुछ कर्म इस प्रकार के होते हैं जो क्रिया मात्र से ही किये जाते हैं। उनका सम्बन्ध न पाप से ही

है न कर्म से ही है। जिस प्रकार एक व्यक्ति बगीचे में सैर करता हुआ, अपने हाथ पैरों को चलायमान रखता है पर स्वाभाविक ही उसके मन में कई प्रकार के विचार आते रहते हैं और जाते रहते हैं, किन्तु यह सारा क्रिया कलाप जो उसकी बिना इच्छा के स्वाभाविक हो रहा है, कुशलाकुशल निक्रमाण के सिद्धान्त के अनुसार कर्म के जाल में अन्तर्हित नहीं किया जा सकता है। इसलिए भगवान पतंजलि देव ने योग दर्शन में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया।

''कर्माशुक्ला कृष्णं योगिना स्त्रिविधर्मितरेषाम''

उपरोक्त सूत्र का अर्थ यह है किये जाने वाले कर्म चार विभागों में विभक्त हैं, पाप के पुण्य, पाप के और पुण्य के मिश्रित और चौथे न पाप के और न पुण्य के केवल क्रिया रूप, कर्म कलाप के इस विभाजन से पुण्य के, पाप के, और पाप और पुण्य के मिश्रित कर्म आम संस्कार के जीवों के हुआ करते हैं। किन्तु योगियों के कर्म न पाप के होते हैं न पुण्य के होते हैं। योगी लोग कर्म करते हुये नहीं करते, खाते हुए नहीं खाते, पीते हुए नहीं पीते, सोते हुए नहीं सोते, उनका सब कर्म कलाप केवल क्रिया मात्र ही हुआ करता है।

यह तो हुई उन उत्कृष्ट योगियों के सिद्धान्त की चीज जो योगी अपनी साधना के बल से कूटस्थ स्थिति में पहुँच चुके हैं। किन्तु जो लोग अभी सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी हैं वह लोग अपने समाधि जनित पुण्य के प्रभाव दृष्टि जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करते हैं और इसके फलस्वरूप अपने निकृष्ट प्रारब्ध की यत्किंचित भुगतान में लेकर उज्जवल व प्रारब्ध के रूप में परिवर्तित कर लिया करते हैं। जिस प्रकार गंगा के पवित्र प्रवाह में पड़कर क्षुद्र जल प्रवाह के छोटे–छोटे नाले अपने आप को गंगा के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं, इसी प्रकार से समाधि जनित उत्कृष्ट पुण्य के प्रभाव में क्लिष्ट कर्माशय का क्षुद्रभोग थोड़े समय में निबट कर उज्जवल पुण्य कर्माशय के फलस्वरूप में परिवर्तित हो जाया करता है। एक स्थान पर एक अच्छे योगाभ्यासी महात्मा ने निवास किया उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में देखा कि आगामी प्रारब्ध भोग में उनको एक सर्प काट खायेगा। प्रारब्ध भोग के संस्कारों को देखकर वह यह जान ही गये थे कि उनको सर्प ने अवश्य काटना है तो उसके अनुसार उसको बचाने के लिए भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह अपने आपको बचा नहीं सके। ठीक समय पर उनको सर्प ने काट ही लिया किन्तु वह विवेक ख्याति की ओर थे इसलिए वह सब प्रभाव उनके सूक्ष्म शरीर पर होकर निबट गये और वे पूर्ववत् अपनी यथार्थ स्थिति में आ

गये, यह था उनके दृष्टीजन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करने का उज्जवल उदाहरण, समाधि के पुण्य प्रभाव से सर्प काटने का फल थोड़े समय के भीतर ही भुगत गया और समाधि में ही श्री गुरूदेव के द्वारा जो दिव्य उपचार किया गया उसके फलस्वरूप वह तत्काल ठीक हो गये उनके शरीर में सर्प विष का आभास भी नहीं रहा। इसी प्रकार एक और योगाभ्यासी महात्मा का मुझे उदाहरण याद आता है, वह महात्मा योगाभ्यासी थे। विवेक ख्याति की ओर तीव्रता से बढ़ चुके थे। उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में एक दिन अनुभव किया कि 2 दिन बाद उनका आकस्मिक मृत्यु का संयोग बना जा रहा है उन्होंने ध्यानायोग में अपने गुरूदेव जी से पूछा प्रभो! मेरा यह मृत्यु संस्कार किसी प्रकार पूर्ण हो सकता है। श्री गुरूदेव जी ने उत्तर दिया बेटा इसके दूर करने में तो कोई कठिनाई नहीं है केवल मात्र तुम कल चावल नहीं खाना तो यह दुःख दूर हो जायेगा। यदि तुम चावल खाओ तो दही न खाना, दही खाओ तो कढ़ी मत खाना। किन्तु इन सब वस्तुओं से तुम्हारा संस्कार है तुम अवश्य ही खाओगे, किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं, तुम विवेक ज्ञान की ओर बढ़ रहे हो। इसलिए वह परम सद्गुरु तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे, हुआ भी ऐसा ही। जब उनके प्राणान्त का समय आया, उन सर्वशक्तिमान ने उनके प्राणों की रक्षा की और उसके बाद दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य से कर्माशय उपार्जित पुण्य से दिव्य प्रारब्ध का भोग आरंभ हुआ, इसलिए जो मनुष्य हर समय भाग्य ही भाग्य पुकारा करते हैं वह अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ खो जाया करते हैं। नीतिशास्त्र का सिद्धान्त है कि उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है भाग्य–भाग्य कायर पुरुष कहा करते हैं, मनुष्य को अपने आत्म बल के आधार पर पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। पुरुषार्थ करने पर भी यदि विफलता मिले तो समझ लेना चाहिए कि तुम्हारा पुरुषार्थ इस समय के कर्म विपाक को दबाने में दुर्बल रहा। उसके लिए फिर बार–बार प्रयत्न करना चाहिए, तप और स्वाध्याय के बल पर सभी कुछ करने की सामर्थ्य वाला बन सकता है। अतः मनुष्य को सदा सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिए जिससे वह इसी जन्म में परम श्रेयभागी बन सके।

अध्यात्म एवं स्वभाव

योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

आत्मा शरीर का आश्रय लेकर अन्तरात्म भाव में उसमें निवास करता है। उस तत्व का अपने स्वभाव में स्थित रहना ही अध्यात्म है। गीता में भगवान कहते हैं **'स्वभावो अध्यात्मं उच्यते'**। स्वभाव ही अध्यात्म कहा जाता है। **'स्व'** नाम आत्मा का है उसका अपने भाव में स्थित रहना ही स्वभाव है। लौकिक अर्थों में स्वभाव प्रकृति या (Nature) को कहते हैं। यह स्वभाव इस जन्म का होता है जो अस्थायी होता है। गुणों के तारतम्य से इसमें परिवर्तन आता रहता है। किन्तु अध्यात्य या स्वभाव बदलता नहीं है। अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत है। आत्मा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहना ही स्वभाव है। योग दर्शन में चित्त वृत्तियों के पूर्ण निरोध हो जाने पर दृष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। ऐसा कहा है–**'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** यही कैवल्य की स्थिति होती है। गुणातीत हो जाने पर ही चित्त का कार्य समाप्त हो जाता है। वह अपनी मूल प्रकृति में लीन हो जाती है।

वृत्तियों का निरोध ही जीव के लिए प्रलय है। जीव को अपने स्वभाव में स्थित होने के लिए योग विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। योग शब्द संस्कृत में अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त होता है। युजिर योगे इस धातु से युजिर योग अथवा जोड़ के अर्थ में प्रयुक्त होता है। दूसरा धातु है युज् समाधौ यहाँ पर युज समाधि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। योग सूत्रों के भाष्यकार व्यासदेव जी को योग का यही अर्थ अभीष्ट है इसीलिए वे लिखते हैं–**योगः समाधि**

समाधि समतावस्था जीवात्म–परमात्मनः। समाधि जीवात्मा और परमात्मा के समतावस्था को कहते हैं। समाधि सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात भेद से दो प्रकार की होती है। जिसमें असम्प्रज्ञात ही वास्तविक योग है। असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा अपने शुद्ध व मूल स्वरूप में आ जाता है। यही त्रिगुणातीत अवस्था है। जो कैवल्य लाभ देता है। जीव जीवत्व

को छोड़कर अपने मौलिक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाये यही स्वभाव या अध्यात्म कहलाता है।

गीता के छठे अध्याय में भगवान ने अर्जुन को योगी बनने का उपदेश दिया है। योगी बनने का तात्पर्य है कि तुम आत्मनिष्ठ बनो। इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा है कि **'तस्मात् सर्वेषु कालेषु योग योक्तो भवार्जन'** तुम हर समय योग युक्त रहो।

योग युक्त मनुष्य का धर्म भी है। इसी स्थिति में ही योगी को चिर शान्ति मिलती है। यही अमृतपद में प्रतिष्ठित होना कहा गया है। यही मुक्ति है।

भगवान ने अर्जुन को योग विद्या का उपदेश दिया। अर्जुन एक गृहस्थधर्मी तथा सांसारिक व्यक्ति था जिसे योगोपदेश किया गया। इसी प्रकार से हर गृहस्थ व्यक्ति भी योग विद्या के महत्त्व, रहस्य अथवा तरीके को समझकर लौकिक तथा परलोक दोनों को ही सुधार सकता है। केवल समझ एवं मन को स्थिर रखकर विवेकयुक्त रहकर कार्य करने की आवश्यकता है। इसी का नाम है समत्व योग जिसे हर व्यक्ति को अपनाकर परम लाभ लेना चाहिए।

मन की एकाग्रता ही ब्रह्माण्ड पर शासन करती है। दर्शन का सार यही है। प्राण, ध्यान और मन का अटूट संबंध है। प्राण की गति ध्यान के साथ होती है। साधक हृदय में ध्यान करे तो प्राण कंठ के नीचे जाने लगता है। जब प्राण हृदय की ओर बढ़ता है, तो सिर को नीचे की ओर प्राण ही झुका देता है। हृदय के आकाश में मन स्थिर होने से, प्राण सूक्ष्म होकर संपूर्ण शरीर की विषमता दूर कर देता है। प्राण सूक्ष्म गति से नासिका में चलने लगता है। प्राण की गति में भी मधुर आनंद प्रतीत होता है। प्राण सात्विक, सूक्ष्म और प्रकाशयुक्त होता जाता है। शरीर को स्वस्थ रखने वाला यह प्राण ही है। यही प्राण, मन ब्रह्मामृत का पान कराता है। साधक जहाँ पर मन को रोकता है, प्राण भी वहीं रुकने लगता है।

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

श्री मद्भागवत् में योगपरिचर्चा

— डॉ. विजय सिंह

संशयशील असुर बालकों ने हँसते हुए कहा—भाई! प्रह्लाद हम—तुम अभी बालक हैं, इन गुरु—पुत्रों के सिवाय न हम न तुम अन्य किसी गुरु के बारे में जानते हैं। अतः प्रियवर! तुम्हारा नारद जी से मिलना हम सबको पच नहीं रहा है। यदि कोई विश्वसनीय बात हो तो तुम हमारी शंका मिटा दो।

अब इसके उत्तर में श्री प्रह्लाद जी ने जो कुछ दैत्य! बालकों को बताया है वह सिद्धों का शक्तिपात को प्रकट करने वाली कथा है, जो सातवें अध्याय में वर्णित है। प्रह्लाद जी ने कहा—जब हमारे पिता मंदराचल पर कठोर तप में लीन थे उस समय देवताओं ने आक्रमण कर महल में लूट–खसोट, मारा–मारी मचा दिया। इन्द्र ने मेरी माता कयाधू को बन्दी बना लिया। जिस समय मेरी माँ रोती बिलखती बलात इन्द्र द्वारा ले जायी जा रही थी। दैववश श्री नारद जी उधर विचरण करते आये और मेरी माँ को देख लिया।

उन्होंने देवराज को कहा—यह निरपराध है। सती–साध्वी परनारी का तिरस्कार मत करो। इसे छोड़ दो, तुरन्त छोड़ दो—''**मुंच मुंच महाभाग सतीं परपरिग्रहम्**''। इन्द्र ने कहा—देवर्षि! इसके गर्भ में मेरे शत्रु का पुत्र पल रहा है। उसके जन्म लेते ही उसे मारकर इस स्त्री को छोड़ दूँगा। नारद जी ने कहा—गर्भस्थ बालक भगवान का परम भक्त, अत्यन्त बली और निष्पाप महात्मा है। तुममें उसको मारने की शक्ति नहीं है—

अयं निष्किल्विषः साक्षान्महाभागवतो महान्।
त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली।। 10 ।।

(अ 07 स्क 07)

इस प्रकार इन्द्र से मुक्त कराकर मेरी माता को श्री नारद जी अपने आश्रम पर लिवा गये और माता से कहा—बेटी! जब तक दैत्यराज तपस्या से लौटें तब तक तुम यहीं रहो। माता ने देवर्षि के संरक्षण में रहते हुए बड़े प्रेम एवं भक्ति से नारद जी की सेवा में लगी रहीं।

देवर्षि नारद बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने ही मेरी माँ को भागवत धर्म का

रहस्य और विशुद्ध ज्ञान दिया। उपदेश करते समय उनकी दृष्टि मुझ पर ही थी। ''**धर्मस्य तत्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम्**''।

देवर्षि नारद की विशेष कृपा होने के कारण मुझे वह ज्ञान स्मृति में है। जो तुम सबों को बताता हूँ।

जन्म, अस्तित्व की अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश शरीर का होता है। आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध एक, क्षेत्रज्ञ, निर्विकार, स्वयं प्रकाश, सबका कारण, व्यापक असंग तथा आवरण रहित है–

मूल प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार और पंच तन्मात्राएँ ये प्रकृति के अवयव हैं। उनके तीन गुण–सत्व, रज और तम तथा उनसे आविर्भूत सोलह विकार–दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच महाभूत हैं। इन सबमें एक पुरुष तत्त्व है। जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति ये बुद्धि की वृत्तियाँ हैं। इनका भी अनुभव जिसके द्वारा होता है वही परमात्मा है।

भाई! गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, ईश्वर प्रणिधान, महात्मा लोगों से सत्संग, भगवान की आराधना, उनके लीला चरित्रों में श्रद्धा, एवं कीर्तन। उनके चरण कमलों का ध्यान, उनके मन्दिर मूर्ति का दर्शन–पूजन करने आदि साधनों से स्वाभाविक प्रेम भगवान में हो जाता है–

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च।
संगेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च।। 30।।

श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम्।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिंगेक्षार्हणादिभि:।। 31।।

(अ 07 स्क 07)

प्रह्लाद जी ने भक्तियोग के द्वारा मनुष्य के बाह्य और अन्तः प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं–मित्रों भक्तिभाव के प्रभाव से रोम–रोम खिल उठता है। आँखें आँसुओं से भरी कण्ठ गद्–गद् हो उठता है। वह पागल की तरह कभी हँसता कभी करुण–क्रन्दन करने लगता है। कभी शांत भाव से ध्यान मग्न रहता है। उसका अन्त:करण आनन्द से भरा रहता है। इसी अवस्था को विद्वान ब्रह्म अथवा निर्वाण सुख से वर्णित करते हैं। ''**तद् ब्रह्म निर्वाण सुखं विदुर्बुधा**''।

इसलिए मित्रों तुम लोगों को सबसे पहले इन गुणों के अनुसार होने वाले कर्मों का बीज

ही नष्ट कर देना चाहिए। इससे बुद्धि–वृत्तियों का प्रवाह रुक जावेगा। इसी को योग या परमात्मा से मिलन कहते हैं–

तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम्।

बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहो परमो धियः॥ 28 ॥

(अ 07, स्क 07)

आठवें अध्याय में नृसिंह भगवान द्वारा हिरण्यकशिपु का वध एवं समस्त देवताओं द्वारा स्तुति गान का वर्णन विस्तार से किया गया है। प्रह्लाद जी द्वारा अपने दैत्य मित्रों को उपदेश देने से उनका भी मन भगवान के प्रति आस्थावान हो उठा। दैत्य गुरुओं ने जब यह सब देखा तो वे भयभीत हो इसकी सूचना असुरराज को दिया। क्रोध से तिलमिलाया क्रूर हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को स्वयं मारने हेतु बुलवाया और बोला–तुम किसके बल–बूते निडर होकर मेरी आज्ञा के विरुद्ध आचरण करते हो?

प्रह्लाद जी ने कहा–दैत्यराज, जो कालों के काल हैं मैं उनकी शरण में हूँ आप भी अपना आसुरभाव छोड़ दीजिए। अपने मन को सबके प्रति समान बनाइये। इस संसार में अपने वश में न रहने वाला कुमार्ग गामी मन के अतिरिक्त और कोई शत्रु नहीं है। मन में सबके प्रति समता रखना ही भगवान की सबसे बड़ी पूजा है–

जह्यसुरं भावमिमं त्वमात्मनः
समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथ स्थितात्
तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥ 10 ॥

हिरण्यकशिपु ने कहा–अरे मूर्ख बालक! मेरे सिवा इस जगत् का स्वामी किसे बतलाता है। तू कहता है वह सर्वत्र है? तो इस खंभे में क्यों नहीं दिखता? ऐसा कहकर वह क्रोध से भरा हाथ में तलवार लेकर उस खंभे पर प्रहार किया। उस समय खंभे में एक बड़ा भयंकर शब्द हुआ। उस घोर शब्द से दैत्य सेनापति भय से काँप उठे। हिरण्यकशिपु घबराया देखने लगा यह अपूर्व घोर शब्द करने वाला कौन है? तभी भगवान हरि नृसिंह के रूप में प्रकट हुये। उनका रूप भयावह था। दाढ़े बड़ी विकराल थीं। बड़े–बड़े नख आयुध की तरह चमक रहे थे। फिर भयंकर युद्ध भगवान नृसिंह एवं दैत्यराज में होने लगा। अन्त में भगवान ने उसे उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे सर्प चूहे को पकड़ लेता है। भगवान ने उसे

सभागार के दरवाजे पर ले जाकर अपनी जाँघों पर गिरा लिया और अपने तिक्ष्ण नख से फाड़ डाला। वे उसे मारकर राज्यसभा के ऊँचे सिंहासन पर जा बैठे। इसी समय ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर आदि देवता सिद्ध, विद्याधर आदि आकर अलग-अलग स्तुति की।

सिद्धों ने कहा–नृसिंह देव! इस दुष्ट ने योग और तपस्या के बल से हमारी योगसिद्ध गति छीन ली थी। अपने नखों से आपने इस घमंडी को फाड़ डाला है। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं–

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधु–
रहार्षीद योग–तयोबलेन।
नानादर्प तं नखैर्निर्ददार
तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ 45 ॥

❀❀❀❀❀❀

शोक संवेदना

— बड़े दुःख के साथ सूचित करते हैं कि सुखरौली, भोजपुर (बिहार) निवासी हरिश्चन्द कक्कड़ का 6 नवम्बर को निधन हो गया है। प्रभु उनकी आत्मा को शान्ति दें।

सिद्धयोग परिवार इस दुःख की वेला में अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

● ●

— कासगंज (एटा) निवासी मोतीलाल जी का 12 नवम्बर को देहावसान हो गया है। वे गुरुदेव के लाड़ले व पुराने बच्चे थे। इस दुःख की वेला में सिद्धयोग परिवार दुःखी परिवार को अपनी हार्दिक संवेदना भेज रहा है। प्रभुजी दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

—सम्पादक
'सिद्धयोग' मासिक

|| ॐ श्री रामलाल प्रभुवे नमः || || ॐ श्री चन्द्रमोहन गुरुवे नमः ||

योग साधना का आधार–स्वस्थ जीवन

– डॉ. के. कुमार [M.D.(Hom)]

लखनऊ–9450290044

आयुर्वेद के सूत्रानुसार 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'', अर्थात् शरीर के माध्यम से ही समस्त धर्म के साधन होते हैं। अतएव साधना में गहराई से उतरने के लिए शरीर रूपी साधन का स्वस्थ होना परम आवश्यक है। महर्षि पतंजली जी ने भी अष्टांग योग के अन्तर्गत आठ अंगों में से 4 अंग (नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) शरीर के लिए ही समर्पित किये हैं। आपकी शरीर रूपी नौका जितनी मजबूत एवं सुदृढ़ होगी, आप साधना रूपी समुद्र एवं इस मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को उतनी ही आसानी से पार कर लेंगे।

इसी सन्दर्भ में सर्वप्रथम मैं कुछ प्रचलित स्वास्थ्य पद्धतियों का सूक्ष्य वर्णन करूँगा, फिर मैं आपको बताऊँगा कि किस प्रकार मनोवैज्ञानिक कारणों से रोगों का जन्म होता है। वस्तुतः जब हम किसी भी रोग का मूल कारण जान लेते हैं तो उसकी चिकित्सा भी सरल हो जाती है। हमारे यहाँ अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रचलित) मौजूद हैं, जो रोगों के कारणों का वर्णन अपने–अपने सिद्धान्त के अनुसार करती हैं।

1. आयुर्वेद :–

आयुर्वेद जो हमारा प्राचीनतम् स्वास्थ्य का स्तम्भ रहा है, वह हमें विस्तार पूर्वक यह ज्ञान देता है कि हम किस प्रकार प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए, स्वस्थ जीवन की आधारशिला तैयार कर सकते हैं तथा उसे जीवनपर्यन्त बनाये रख सकते हैं। आयुर्वेद में शरीर के 3 स्तम्भ माने गये हैं जिन्हें वात, पित्त और कफ कहा जाता है। कतिपय कारणों से इन तीनों अथवा तीनों में से एक का भी संतुलन बिगड़ जाना रोगों की उत्पत्ति का कारण माना गया है।

आज के युग में भी आयुर्वेद के नियम पूर्णतया सत्य हैं, क्योंकि यह ज्ञान ऋषियों द्वारा प्रकट किया गया है। परन्तु आज के परिवेश में आयुर्वेद के नियमों का पालन पूर्णरूपेण सम्भव नहीं है। आज की शिक्षाप्रणाली एवं वातावरण इस पद्यति के बिल्कुल ही प्रतिकूल है।

आयुर्वेद में जो औषधियाँ वर्णित हैं, उन सभी की जन साधारण में उपलब्धि, उनका पूर्ण ज्ञान भी इस समय पर सर्वसुलभ नहीं। इसके अतिरिक्त औषधियों का बनाने का तरीका एवं मूल्यानुसार जन साधारण के लिए उपलब्धता भी थोड़ा कठिन है।

अतः ऋषियों द्वारा प्रकट इस दिव्य ज्ञान का पूर्ण उपयोग आज के युग में संभव नहीं हो पा रहा है।

2. एलौपैथी :–

इस समय सभी तरफ इसी पद्धति का वर्चस्व दिखायी पड़ रहा है, परन्तु अब जन साधारण एवं पढ़े लिखे लोग भी यह जान चुके हैं कि इन दवाओं के कितने घातक दुष्परिणाम होते हैं, यही कारण है कि जब तक कोई इमरजेन्सी ना हो, आज का मानव इस पद्धति से दूरी बनाये रखना चाहता है।

एलौपैथी वास्तव में रोग को नष्ट करने में विश्वास रखती है। रोग किस कारण से हुआ है, इसकी परिकल्पना इस विधि में भिन्न प्रकार से है। ये रोग का कारण कोई Virus, Bacteria या Fungus या सूक्ष्मजीव आदि मानते हैं। वो इस स्थूल शरीर को ही सब कुछ मानते हैं, परन्तु वो ये नहीं जानते कि इससे परे भी कुछ है जो इस शरीर में परिवर्तन की क्षमता रखता है, इसको मैं आगे के लेख में विस्तार से चर्चा करूँगा।

इस विषय में एक छोटी सी बात यह कहना चाहूँगा कि जैसे यदि, किसी बाल्टी में छेद हो जाये तो हमें वो छेद बन्द करना चाहिए या उसमें से जितना पानी निकल रहा है, उतना पानी हमें ऊपर से डालकर पानी का स्तर बनाये रखना चाहिए। निश्चित रूप से आप सभी का जवाब होगा कि हमें वो छिद्र बन्द करना चाहिए जिससे पानी बह रहा है, यही इसका समुचित इलाज होगा। इसी प्रकार आप जरा सोचिये कि हम जो जीवन भर ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, थायराइड आदि की दवा खाते रहते हैं तो हम क्या करते हैं, वास्तव में ये उसी तरह से है कि छेद भरी बाल्टी का छेद ना बंद करके उसमें जीवन भर ऊपर से पानी डालते रहें।

3. यूनानी चिकित्सा पद्यति–

इस चिकित्सा पद्धति में दवाईयाँ काढ़े, चटनी, शर्बत इत्यादि के रूप में होती हैं। परन्तु दवाओं को बनाने और उनका उपयोग का तरीका आज के व्यस्त जीवन में प्रयोग होना पूर्णतया सम्भव नहीं, इसलिए यह पद्यति भी धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही है। पुराने हकीम हैं जो इसके जानकार हैं परन्तु नयी पीढ़ी इसमें रुचि नहीं ले रही।

4. योग चिकित्सा–

योग द्वारा शरीर का सर्वांगीण विकास होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से योगासन, प्राणायाम इत्यादि करता रहे तो वह निश्चित रूप से जीवन भर निरोगी रहेगा। परन्तु आज के युग में असंयमित आहार, व्यवहार एवं विचार के कारण जब शरीर रोगों से घिर जाता है तब अनेक प्रकार के योगासन अथवा प्राणायाम करने में अक्षम हो जाता है। आज का व्यस्त जीवन एवं धनलोलुपता के कारण व्यक्ति इस ओर समय देना ही नहीं चाहता, इसलिए सभी लोग योग के पात्र नहीं हो पाते।

5. एक्यूप्रेशर (Accupressure)–

आजकल यह पद्धति भी हमारे देश में प्रचलित हो रही है। इसमें शरीर में जगह–जगह कुछ ऊर्जा के केन्द्र माने गये हैं जिनको उत्तेजित करके इलाज किया जाता है। इस पद्धति में ये माना गया है कि इन ऊर्जा केन्द्रों पर जो ऊर्जा रहती है, उसके असंतुलन से बीमारियाँ पैदा होती हैं। स्नायु रोगों में यह पद्यति अधिक कारगर है।

6. एक्यूपन्चर (Accupuncture)–

यह विधि भी Accupressure से मिलती जुलती है बस दोनों में फर्क ये है कि एक्यूप्रेशर में हाथ/अँगूठा/ किसी यंत्र के दबाव से ऊर्जा संतुलित की जाती है और एक्यूपन्चर में बारीक–बारीक सुईयाँ चुभाकर उन केन्द्रों को उत्तेजित करते हैं। यह भी स्नायु रोगों में अधिक कारगर है।

7. प्राकृतिक चिकित्सा–

आजकल लोग अधिक मात्रा में इस पद्धति की ओर आकर्षित हो रहे हैं परन्तु फिर भी जिनके पास समय का अभाव है वो इस पद्धति को पूर्णरूपेण उपयोग में नहीं ला पाते। इसके अन्तर्गत काफी ऐसी विधियाँ हैं जैसे पंचकर्म इत्यादि जो निश्चित रूप से प्रभावी है परन्तु समय की खपत इसमें अधिक होती है।

8. चुम्बक चिकित्सा (Magnet Therapy)–

ये विधि एक्यूप्रेशर और एक्यूपन्चर से मिलती जुलती है। इसमें ऊर्जा के केन्द्रों को चुम्बक द्वारा उत्तेजित किया जाता है। चुम्बक के पाजिटिव एवं निगेटिव पोल को एक विशेष तरीके से हाथों/पैरों या केन्द्रों पर टेप द्वारा चिपकाया जाता है। यह पद्धति भी स्नायु रोगों में विशेष रूप से लाभकारी है।

9. रेकी–

आजकल लोग इस विद्या की तरफ भी आकर्षित हो रहे हैं। रेकी एक प्रकार से ध्यान योग द्वारा चिकित्सा है। रेकी मास्टर गहन ध्यान का अभ्यास करके अपनी संकल्प शक्ति से अपनी ऊर्जा को दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कराते हैं जिससे रोगी की ऊर्जा संतुलित हो जाये।

कई प्रकार के मनोरोगों में इसका अच्छा उपयोग है। जिन लोगों के पास समय का अभाव है, उनके लिए ये थोड़ा कठिन है, क्योंकि इसका एक सेशन लगभग 20–25 मिनट का होता है।

इसके अतिरिक्त रत्न चिकित्सा, सुगंध चिकित्सा, रंग चिकित्सा तथा अनेक अन्य प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ भारतवर्ष में प्रचलित हैं।

अब मैं बात करूँगा होम्योपैथी की, जो आज के युग में बहुत तेजी से प्रचलित एवं विकसित हो रही है।

10. होम्योपैथी–

आज के युग में केवल होम्योपैथी ही एक ऐसी पद्धति है जो प्रयोगात्मक रूप से सभी के लिए अपनाना सम्भव है। जन साधारण से लेकर अतिविशिष्ट अथवा अत्यन्त व्यस्त मानव भी इस पद्धति की सहायता से रोगों से मुक्ति पा सकता है। वैसे तो कोई भी पैथी सम्पूर्ण नहीं है या जो सम्पूर्ण है उसका पूर्ण ज्ञान इस समय के चिकित्सकों को नहीं है। हर चिकित्सा पद्धति को अपनाने में कुछ दिक्कतें आती हैं परन्तु होम्योपैथी में वो सभी प्रयोगात्मक समस्यायें अत्यन्त सूक्ष्म हैं। दवाओं की उपलब्धता अथवा मूल्य के अनुसार भी ये चिकित्सा पद्धति अन्य से श्रेष्ठ है।

जैसे एलौपेथी में रोग का निदान किया जाता है वैसे होम्योपैथी का सिद्धान्त कहता है कि हमें रोगी की चिकित्सा करनी चाहिए। यदि वह मनुष्य जो रोगी है हम उसे ठीक कर देंगे तो रोग स्वयं ही चले जायेंगे। मैं आप सभी से पुनः विनती करूँगा कि इस बात पर विचार करें कि रोग का ठीक करना और रोगी का ठीक करना दोनों में बहुत अन्तर है। ऐलोपैथी में विभिन्न रोगों के लिए विभिन्न दवायें दी जाती हैं क्योंकि रोग अनेक प्रकार के हो सकते हैं, होम्योपैथी में एक दवा दी जाती है क्योंकि रोगी तो एक ही होगा भले ही उसे कितने ही रोग हों। इसे आप इस प्रकार समझिये कि जैसे कोई 10 मंजिला इमारत है और आप उसे गिराना चाहते हैं, तो आपके पास दो तरीके हैं—या तो आप उसकी हर एक मंजिल पर वार करिये या सिर्फ नींव पर वार करिये। निश्चित रूप से नींव पर वार करने से सम्पूर्ण इमारत

ढह जायेगी, ठीक इसी तरह नींव पर वार करने का काम होम्योपैथी करती है।

रोगों के कारण की समीक्षा भी होम्योपैथी में अलग तरीके से की गयी है। असल में होम्योपैथी में माना गया है कि रोग विभिन्न प्रकार की मनोदशाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। गीता में भगवान कृष्ण हमें समत्वं रहने का उपदेश करते हैं, जब कभी हम उस आदेश का पालन न करते हुये राग द्वेष आदि द्वन्दों में फंस जाते हैं तो हमारी मनोस्थिति में कुछ परिवर्तन होते हैं जो रोगों के जन्म का कारण बनते हैं। इस पद्धति में रोगों के कारण की अत्यन्त सूक्ष्म परिकल्पना की गयी है जो आज के भौतिकवाद में मशीनों द्वारा नापना बिल्कुल ही असम्भव है, इसलिए भौतिकवादी वैज्ञानिक इस पद्धति की प्रमाणिकता को हमेशा से नकारते आये हैं। परन्तु प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं। आज यह चिकित्सा विधि लाखों लोगों के बीच लोकप्रिय हो रही है और निरंतर विकसित हो रही है।

मनुष्य की मनोदशा इस स्थूल शरीर को निश्चित रूप से प्रभावित करती है। उदाहरण के रूप में मान लीजिये कि आप किसी कमरे में बैठे हैं और आपकी दृष्टि अचानक कमरे के कोने में पड़े और आप देखें, कि वहाँ पर एक साँप पड़ा है तो आप कल्पना कीजिए कि आपकी क्या दशा होगी उस साँप को देखकर। निश्चय ही आपको पसीना आने लगेगा, डर के मारे आपकी हृदयगति तीव्र हो जायेगी, कुछ कमजोर दिल वाले लोग तो कहिये बेहोश ही हो जायें। कल्पना कीजिये कि दूसरे ही पल आपको यह पता लगे कि वो सर्प मृत है तो आप सामान्य हो जायेंगे।

अब आप इस उदाहरण पर गम्भीरता पूर्वक विचार करिये कि ना तो उस सर्प ने आपको देखा, ना फुंसकारा, ना डराया, केवल इस बात के बोध से कि वह जीवित है या मृत है, आपके शरीर में अनेकों परिवर्तन होने लगते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हमारी मनोदशा हमारे इस स्थूल शरीर में परिवर्तन कर सकती है।

किस प्रकार की मनोदशा किस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती है, इसका विस्तृत वर्णन मैं आगे के लेखों में करूँगा। यदि आप किसी रोग अथवा समस्या का कारण जान लें और उस कारण को हटाने का प्रयास करें तो निश्चित रूप से रोग से भी मुक्त हो जायेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं। आगे के लेखों में, मैं जिन मनोदशाओं का वर्णन करूँगा, आप उस पर विचार करके निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे।

(क्रमशः......)

●●●

सांसारिक कामनायें (W)

— प्रो. ऋषिराम शर्मा

यह स्थूल जगत जीवात्माओं की स्वभावज कामनाओं का ही स्थूल रूप है। पूर्व जन्मों की कामनायें अन्तःकरण में वासनाओं के संस्कारों के रूप में तथा वर्तमान जन्म की कामनायें चित्तवृत्तियों के रूप में कर्माशय का निर्माण करती हैं। परमात्मा की अनन्तशक्तियुक्ता योगमाया समस्त जीवसृष्टि के लिए कर्मविधान तथा गुणविधान के द्वारा सभी जीवों की फलोन्मुखी परिपक्व कामनाओं के अनुकूल इस दृश्य जगत का निर्माण कर देती है। इस विषय में शास्त्र का प्रमाण है कि—

''सति मूले तद्विपाको जात्यायुभोगाः ''

(योगदर्शन 2/13)

ते ध्यानयोगानुगताः अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूदाम्।
सा कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एका।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।।

यावत् हेतुफलावेशः तावत् हेतुफलोद्भवः।
क्षीणे हेतुफलावेशेः संसारं न समुपद्यते।।

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।
सः विश्वरूपः त्रिगुणः त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः।।
स्थूलानि सूक्ष्मानि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैः वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्चैव तेषां संयोगहेतुः अपरोऽपि दृष्टः।।
काममयः एव अयं पुरुषः इति, सः यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति।
यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते।।

अर्थात् प्रकृति का यह नियम है कि चित्त में संचित कर्माशय के जो कर्म फलोन्मुख होकर प्रारब्ध बनते हैं वह प्राणशरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

प्राणशरीर के द्वारा भौतिक शरीर तथा सूक्ष्मशरीर में प्रवेश कर जीवात्मा के स्वभाव का

निर्माण करते हैं। यह प्रारब्ध ही जीवात्मा की प्रत्येक योनि, उस योनि की आयु यानि मृत्यु का समय तथा योनिगत सुख–दु:ख के भोगों एवं सभी प्रकार के सम्बन्धों का निर्धारण करता है। मनुष्ययोनि में कुछ विशेष कर्म जैसे एकाग्रचित्त द्वारा विशेष शक्तिसम्पन्न देवों की अर्चना, सिद्धपुरुषों की सेवा, कठोर तप अथवा समाधि की योग्यता वाले कर्म प्रारब्ध में प्रवेश कर जाते हैं। मनुष्ययोनि भोगयोनि नहीं है इसलिए इस योनि में मनुष्य प्रारब्धकर्मों को करने के लिए तो प्रकृति के द्वारा बाध्य होता है किन्तु मन तथा बुद्धि पर अपना नियन्त्रण करते हुए पुरुषार्थकर्मों को करने में स्वतन्त्र होता है। अत: आध्यात्मिक प्रगति मनुष्ययोनि में ही सम्भव है। सृष्टि में प्रत्येक क्षण परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के पीछे प्रकृति अपादान कारण है तो पुरुष निमित्त कारण है। कारण से कार्य का सम्पादन होता है और वह कार्य किसी अन्य कार्य के लिए कारण का रूप ले लेता है इस तरह इस कारण–कार्य की शृंखला से सृष्टि का निर्माण तथा परिवर्तन सम्भव होता है। यह प्रक्रिया अत्यन्त सूक्ष्म है, इन्द्रियों का विषय नहीं है, केवल ज्ञानचक्षु से ही इसका निरीक्षण तथा विश्लेषण सम्भव है। इस सूक्ष्म गुणात्मक प्रक्रिया को जानने के लिए जब ज्ञानचक्षुसम्पन्न सिद्धपुरुषों ने संकल्प किया तब उन्होंने समाधि में इस प्रक्रिया की अधिष्ठातृशक्ति परमात्मा की योगमाया को देखा जो सभी अनन्त कारणों की मूलकारण थी तथा विश्वरूपा थी। उन्होंने अनुभव किया कि अनन्त जीवात्मायें मायिक गुणों के बन्धन में मायिक विषयसुख की कामनाओं की लहरों में भवसागर में डूबे हुए हैं, अनेकानेक योनियाँ रूपी लहरों में गोता खा रहे हैं, कभी स्थूलशरीरों में तो कभी सूक्ष्मशरीरों में जन्म–मृत्यु के आवागमन में भ्रमित हैं। इस आवागमन की क्रिया में अन्त:करण में संचित कर्माशय तथा वासनाओं के संस्कारों का विशेष योगदान है, क्योंकि इन्हीं की प्रेरणारूपी वायु से प्रेरित होकर भवसागर में लहरें उठती हैं यानि जीवात्माओं का जन्म तथा मृत्यु का आवागमन निरन्तर चलता रहता है, क्योंकि–

जातिदेशकालव्यवहितानामपि आनन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोः एकरूपत्वात्।।

(योगदर्शन 4/9)

तदसंख्येयवासनाभिः चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्।।

(योगदर्शन 4/24)

अर्थात् किसी भी योनिविशेष में जन्म लेने से, किसी भी युग मन्वन्तर तथा काल में तथा किसी भी लोक अथवा प्रदेश में जन्म लेने तथा शरीर त्यागने तथा पुन: नवीन शरीर धारण करने पर भी वासनायें नष्ट नहीं होतीं अपितु उनकी निरन्तरता एवं भुगतानप्रक्रिया

बनी रहती है, क्योंकि वासनाओं के चित्त में संचित संस्कार तथा स्मृति मायिक सृष्टि में एकरूप हैं यानि संस्कार स्मृति के रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। मायानिर्मित चित्तरूपी सूक्ष्म शरीर में असंख्य तथा अनन्त वासनाओं के संस्कारों को संचित करने की क्षमता है, क्योंकि सभी मायिक तत्व परस्पर सहयोग में निरन्तर कार्यरत रहते हैं। इसी को अनन्त योगमाया कहा जाता है। यही योगमाया परमात्मा का स्वभाव है, ऐसा वेदवाणी का कथन है कि–

भोगार्थं सृष्टिः इति चान्ये क्रीड़ार्थमिति चापरे।
स्वभावोऽयमस्य देवस्य आप्तकामस्य का स्पृहा।।
प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैः एतैः विनिर्मिता।
माया ह्येषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयंम्।।

अर्थात् कुछ सृष्टिचिन्तकों का मानना है कि परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना विषयभोगों के लिए किया है तथा अन्य विद्वानों का मानना है कि यह रचना परमात्मा ने क्रीड़ा करने के लिए किया है किन्तु परमात्मा तो आप्तकाम है। यह सृष्टि तो ईश्वर का ऐश्वर्य है जोकि उसका स्वभाव मात्र है। जैसे अग्नि से ज्वालायें स्वाभाविक निकलती हैं वैसे ही प्राणादि से आरम्भ होकर अनन्त मायिक तत्व स्वाभाविक प्रकट होते हैं जिनके परिणामस्वरूप वह स्वयं भी जीवात्माओं के रूप में अनन्त प्रतिबिम्बों में दिखाई दे रहा है। यह जीवात्मा संकल्परूप है, चित्त में संकल्पों के संस्कार वासना के रूप में रहते हैं, जैसे संकल्प तदनुकूल योनियाँ मिलती रहती हैं, गुणों से उत्पन्न अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश तथा तज्जनित कर्माशय माया के गुणकर्मविधान के अनुसार सृष्टिचक्र को चलाता रहता है। इस विषय में वेदवाणी का कथन है कि–

''यच्चित्तो प्राणमायाति प्राणः तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति।।''

अर्थात् जिन परिपक्व संस्कारों के साथ जैसा चित्त प्राणशरीर में प्रवेश करता है, प्राण परमात्मा के तेज से युक्त जीवात्मा के रूप में संकल्पों के अनुकूल लोक में जन्म लेता है। यही सृष्टि का रहस्य है। जब तक जीवात्मा गुणों के प्रभाव में कामनाओं के आधीन फल देने वाले पुण्यकर्म, पापकर्म तथा मिश्रितकर्मों को करती रहेगी तब तक उन कर्मों का फल भोगने के लिए शरीर धारणा करने को बाध्य है। इसी त्रिगुणात्मक सांसारिक कामनाओं का बन्धन जीवात्मा को शरीर की आसक्ति से तथा कर्मफल से बाँधकर रखता है। भगवान

श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता के रूप में इस सत्य का रहस्योद्घाटन किया है कि–

सत्वं रजः तमः इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।
तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकं अनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।।
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तन्निध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्।।
तमस्तु अज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्य निद्राभिः तन्निबध्नाति भारत।।
सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।।

(क्रमशः.......)

घरेलू औषधि हींग

हींग के कई नाम हैं। सहस्रवेधि, जतुक, हिंगु, रामठ आदि हींग के संस्कृत नाम हैं।

गुण–हींग, गर्म, पाचन, रुचिकारी, तीक्ष्ण, वात, कफ, शूल, गुल्म, आनाह तथा कृमि को नष्ट करने वाला है। उत्पत्ति स्थान भेद से हींग दो प्रकार की है। पशा वाह्लीक, वा रामठ। वाह्लीक फारस के देशों में पाया जाता है। अफगानिस्तान या पंजाब में पाये जाने वाले हींग को रामठ कहते हैं। बाजार में कई प्रकार की हींग मिलती हैं। कन्धारी हींग, यूरोपीय हींग, भारतीय हींग। भारतवर्षीय हींग उत्तम, कन्धारी मध्यम तथा पिण्ड अधम गुण वाला माना जाता है। हींग नाड़ीगत पीड़ा अपस्मार तथा मनोविकार में प्रयुक्त होता है। कास में, पुराने कफ रोग में या श्वांस में प्रयुक्त होता है। वायु नाशक या आहमान हर (अफारा) होने के कारण ग्रहणी शूल, या आमाशयोदभव पीड़ा में प्रयुक्त होता है। क्रिमि को नष्ट करने के कारण किमि रोगों में प्रयुक्त होता है। मलेरिया में भी प्रयोग कर सकते हैं। बार–बार गर्भ स्राव में प्रयुक्त होता है। गर्भ स्राव रुकता है। घरों में आमतौर पर उड़द की दाल में हींग का छोंक लगाया जाता है।

योग वाशिष्ठ से साभार—

वशिष्ट ऋषि का भुशुण्ड से पूर्व कालिक वृत्तान्त एवं आयु सम्बन्धी प्रश्न करना

भुशुण्ड ने कहा—मुने! मैं जो निर्विघ्नतापूर्वक आपका दर्शन कर रहा हूँ इससे प्रतीत होता है कि चिरकाल से संचित किये गये मेरे पुण्यों का फल आज ही प्रकट हुआ है। मुनिराज! आज आपके दर्शन से यह घोंसला, यह शाखा, यह मैं और यह कल्पतरू—ये सब पवित्र हो गये। श्री वशिष्ठ ने पूछा—पक्षिराज! उस प्रकार बलवान एवं अगाध बुद्धि सम्पन्न तुम्हारे भाई यहाँ दिखाई क्यों नहीं देते। अकेले तुम ही क्यों दृष्टिगोचर हो रहे हो। भुशुण्ड ने कहा—निष्पाप महर्षे। हम लोगों को यहाँ रहते बहुत काल व्यतीत हो गया, यहाँ तक कि दिन की भांति युगों की पंक्तियाँ समाप्त हो गयीं। अतः इतना लम्बा समय व्यतीत हो जाने के कारण मेरे सभी छोटे भाई तृण की भांति अपने शरीरों का त्याग करके कल्याणमय शिवनद में लीन हो गये हैं क्योंकि चाहे कोई कितना ही दीघार्यु हो, महान हो, सज्जन हो, बलवान हो सभी को काल निगल जाता है।

श्री वशिष्ठ जी ने पूछा—प्यारे वायस राज! जिस समय प्रलय वायु अनवरत वेग पूर्वक बहने लगती है उस समय क्या तुम्हें खेद नहीं होता। सूर्य की प्रचण्ड किरणों से कष्ट नहीं होता। यह कल्प वृक्ष जो स्वयं ही अत्यन्त ऊँचा है यह जागतिक क्षोभों से क्षुब्ध नहीं होता।

भुशुण्ड ने कहा—भगवन्! हम सदा परमात्मा में ही संतोष मानकर स्थित रहते हैं। इसलिए भ्रम के अवसर आ जाने पर भी हमें कभी इस जगत् में भ्रम नहीं होता। ब्रह्मन! हम अपने स्वभाव मात्र से सन्तुष्ट रहते हैं। कष्टदायक विचारों से मुक्त होकर अपने इस घोंसले में रहकर केवल कालयापन करते हैं। हमें न इस देह के जीवित रहने की आशा है और न रहने पर कोई दुःख ही है। क्योंकि हम लोग वर्तमान समय में जिस प्रकार स्थित हैं वैसे ही आगे भी स्थित रहेंगे। हमने प्राणियों की जन्म—मरण आदि दशाओं का अवलोकन कर लिया है, और हमारे मन ने अपने चंचल स्वरूप का सर्वथा त्याग कर दिया है। निरन्तर शान्ति

प्रदान करने वाले अपने सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञान में स्थित होकर मैं इस कल्प वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ सदा काल की कलापूर्ण गति को जानता रहता हूँ। ब्रह्मन्! मैं रत्न सदृश चमकीले पुष्प गुच्छों के प्रकाश से युक्त इस कल्पलता वृक्ष में बैठकर प्राणायाम के द्वारा योगबल से सम्पूर्ण कल्प की बात जान लेता हूँ। मैं इस ऊँचे शिखर पर बैठा हुआ अपनी बुद्धि से लोकों के कालक्रम की स्थिति को जानता रहता हूँ। मुनिवर! मेरा मन असार और सार वस्तु के विभाग करने वाली बुद्धि के ज्ञान से उत्तम शान्ति को प्राप्त हो गया है अतः इसकी चंचलता नष्ट हो गई है। और हम मेरा चित्त शान्त होकर स्थिर हो गया है। हे अगाध बुद्धि सम्पन्न महर्षे! सांसारिक व्यवहारों से उत्पन्न मिथ्या आशारूपी पाशों से बँधा हुआ भूलोकवासी साधारण कौआ जिस प्रकार व्यथित और भयभीत रहता है उस प्रकार मैं भयभीत नहीं होता हूँ। क्योंकि शान्तिरूप धर्म वाली तथा आत्म प्रकाश से शीतल हुई बुद्धि द्वारा संसार की माया को देखते हुए हम लोग धैर्य सम्पन्न हो गये हैं। इस कारण से भयंकर दशाओं में भी हमारी बुद्धि पर्वत के समान स्थिर रहती है। हे मुनिराज! समस्त भूत समुदाय व्यवहार दृष्टि से आते और जाते रहते हैं। परन्तु परमार्थ दृष्टि से न कोई आता है न जाता है। अतः इस विषय में हम लोगों को भय कैसा? जिनके भय शोक एवं आवास नष्ट हो चुके हैं तथा जो आत्मलाभ से संतुष्ट हैं ऐसे आप जैसे महापुरुष हम पर अनुग्रह करते रहते हैं इसलिए हम लोग सारे दुःखों से मुक्त हो गये हैं। अब हमारा आत्मा निर्विकार, क्षोभरहित और शान्त हो गया है इसलिए हम परम शान्ति को प्राप्त हो गये हैं—

(क्रमशः......)

लेखकों से......

सिद्धयोग के सुविज्ञ लेखकों से अनुरोध है कि वे प्रकाशनार्थ हमें भेजी जानी वाली अपनी समस्त रचनाएँ—लेख, कविताएँ आदि कागज के केवल एक ही ओर लिखकर भेजें। रचनाएँ सुस्पष्ट सुलेख में होनी चाहिए। इससे हमें सम्पादन और प्रकाशन के कार्य में अतीव सुविधा मिलेगी। धन्यवाद!

—सम्पादक

टोड़रपुर (वाराणसी) का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन योगाश्रम टोड़रपुर वाराणसी का वार्षिक उत्सव 20 अक्टूबर से 23 अक्टूबर तक रखा गया था। आश्रम के एक बड़े सत्संग भवन व दरबार में यह कार्यक्रम रखा गया था। 19 अक्टूबर को ही श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम से आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज आ गये थे उन्हीं की अध्यक्षता में यह कार्यक्रम रखा गया था। वे इस आश्रम के संरक्षक भी हैं। 20 अक्टूबर से ही प्रात:काल 5 बजे मंगला आरती के बाद एक घण्टा ध्यानाभ्यास कराया गया जिसमें सैकड़ों ध्यानाभ्यासियों ने बड़े हॉल में बैठकर ध्यान किया। 6 बजे से जीवन तत्व साधन एवं योग के चुने हुये आसन आचार्य दासलाल जी ने कराये। तत्पश्चात आचार्य डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप जी ने विस्तार से प्राणायाम, कपालभाति, अनुलोम विलोम कराये। अग्नि सार एवं न्यौलि का अभ्यास एवं प्रदर्शन भी कराया गया। इस बार विशेष रूप से शंख प्रक्षालन एवं धौति का अभ्यास साधकों को कराया गया। विभिन्न प्रदेशों से आये हुए साधकों ने दर्जनों की संख्या में धौति क्रिया का अभ्यास डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप जी के देखरेख में किया। साथ ही दर्जनों साधकों को शंख प्रक्षालन भी कराया गया। इसके पश्चात अल्पाहार के बाद 9 बजे उत्सव की आरती की गई तथा गीता के तेरहवें अध्याय का सामूहिक पाठ किया गया। आचार्य डॉ. दासलाल जी ने इस अध्याय का सार हिन्दी में बहुत ही सरल ढंग से समझाया। इन्होंने कहा–कि अपने जीवन में उज्जवल कर्मों की खेती करनी चाहिए जो मोक्ष के लिए सहायक होते हैं। साधक को चाहिए कि वे ज्ञान की उत्तम खेती करें। सर्वप्रथम साधक को अमानी अर्थात् मान व पूजा की इच्छा से रहित होना चाहिए। मान पूजा की भावना साधक के लिए विष्ठा के समान त्याज्य है। दम्भ या ढोंग नहीं करना चाहिए। लोग दिखावे में कुछ और होते हैं और वस्तुत: कुछ और होते हैं। यही ढोंग कहलाता है। साधक को क्षमावान, मनसा वाचा कर्मणा सरल रहना चाहिए, गुरु का पूजक होना चाहिए, शरीर एवं मन की शुद्धि रखनी चाहिए। स्थिरता तथा आत्म निग्रह रखना चाहिए। विषयों के प्रति वैराग्य तथा अहंकार रहित होना चाहिए। जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि रूप दोष को समझकर उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

पत्नी, पुत्र तथा गृहादि में आसक्ति नहीं होनी चाहिए। शुभ एवं अशुभ की प्राप्ति में अपने मन को समतावस्था में रखे। अव्यभिचारिणी भक्ति के द्वारा प्रभु का ध्यान करे। एकान्त का सेवन करे, जन समूह से दूर रहे। प्रतिदिन ध्यानाभ्यास में बैठे। यही वस्तुतः ज्ञान कहा गया है इसके विपरीत सब अज्ञान ही है। इस प्रकार से तेरहवें अध्याय का सार समझाया गया। तत्पश्चात डॉ. विजय सिंह जी ने सद्गुरु तत्व की महिमा का निरूपण करते हुए कहा कि योग गुरुकृपा सापेक्ष है। गुरु कृपा के बिना योग में विकास संभव नहीं होता है। सायं कालीन सत्संग में डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप जी ने आजकल के मल्टीमीडिया कम्पनियों में कार्यरत नवयुवकों के निराशाजनक जीवन का उल्लेख करते हुए चिन्ता व्यक्त की और कहा—नवयुवक अच्छे संस्कारों के न पाने के कारण निराश हैं और आत्महत्या जैसी जघन्य पाप कर बैठते हैं। अतः शिक्षा के साथ–साथ अध्यात्म शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया।

21 अक्टूबर को गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ हुआ। आचार्य श्री ने त्रिगुणात्मिका माया का विस्तार से निरूपण किया। साधक को मन, बुद्धि में व्याप्त रहने वाले माया के स्वरूप को समझकर इनसे बचते हुए योग की ऊँची भूमिकाओं में प्रवेश करने का प्रयास करना चाहिए। इसी प्रकार से 22 व 23 अक्टूबर का कार्यक्रम चला। 23 अक्टूबर को इलाहाबाद से आये श्री जनार्दन पाण्डेय जी ने साधकों को गुरुतत्व की महिमा समझाया और आदि गुरु शंकराचार्य द्वारा रचित गुरु–अष्टक का भाव समझाया। उन्होंने कहा यदि गुरु भक्ति नहीं है तो ऊँची पदवी, विपुल सम्पत्ति लोक ख्याति सब बेकार है। निरर्थक है। अतः साधक के अन्दर सच्चे अर्थों में गुरु भक्ति का विकास होना चाहिए। तभी साधक आगे बढ़ सकता है।

वार्षिक उत्सव में बाहर से आने वालों में मण्डी हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार के हजारों साधकों ने भाग लिया तथा अपने को योग ज्ञान एवं गुरु ज्ञान से धन्य किया। इस प्रकार से धूमधाम से 23 अक्टूबर को उत्सव का समापन हो गया।

ॐ श्री राम लाल प्रभवे नमः

तजि ममता मद मान

—कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

भक्त शिरोमणि भगवान के अनन्यचरणानुरागी संत तुलसी दास का भगवान श्री राम के प्रति अनन्य निष्ठा उनके ग्रंथों में उपलब्ध है। वे समाज के सच्चे और जागरूक प्रतिनिधि हैं। ईश्वर समाज को चैतन्य करने के लिए कलियुग के भगवान संतों के माध्यम से समाज को दृष्टि देने का अवसर प्रदान किया है। परन्तु धन्य हो जीव जो स्वकर्म के वश होकर ममता, मद और मान के लिए कार्य करता हुआ दिखता है। यही बन्धन का कारण है। सद्गुरुदेव भगवान की वह अमोघ वाणी जिसमें उन्होंने संकेतों के माध्यम से बहुत सी बातें बतायी। किन्तु हाय हम सब नारकीय जीव ममता और मद में फँसा हुआ है। आज भी हम फँसते चले जा रहे हैं। पहले सन्तान की कामना। पुनः ब्याज रूप प्रपौत्र सन्तान की कामना। यही ममता है।

सिद्ध गुफा सवांई के साधक समुदाय जो भी सद्गुरु के सम्पर्क में किसी तरह भी आया, वह कृतार्थ हो रहा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है, साधक स्वयं अनुभव कर रहा है। योग साधना की सफलता का कोई साध्य उपार्जन उसी प्रकार नहीं प्रस्फुटित होता है। जैसा कि गुरुदेव भगवान साधक की साधन सफलता पर कहा करते थे कि—समुद्र पीकर भी होंठ सूखे प्रतीत हों। यह दृढ़ वाक्य आगे के सोपान की सीढ़ी का कार्य करता था। साधक जिज्ञासु वृत्ति वाला बनकर अगले सोपान की तैयारी में लग जाता है। सद्गुरु की कृपा आज भी बरकरार है। गुरुदेव की ही अमोघवाणी सुनने को मिला था। जब किसी साधक ने पूछा—भगवान जब हम कदाचित्त साधन हीन हो जायें और मद, मान रूपी सागर में डूबने लगें तो हमारा क्या होगा? वह आवेश का स्वरूप आज भी जब लेख लिखा जा रहा है। प्रभु के हाथों की क्रियाशीलता भाव भंगिमा एवं उत्साह देखने लायक था। गुरुदेव भगवान ने कहा—लल्ला (हाथ आगे बढ़ाकर) उसका हाथ पकड़कर खींच लूंगा। सत्संग का क्रम बढ़ता रहा समस्त साधक समुदाय गुफा के सामने बैठा सत्संग की लहर से एवं गुरुदेव भगवान की वाणी से रोमांचित हो रहा था। प्रभु के सम्मुख बैठकर भजन एवं नाम संकीर्तन

भी चलता रहा। साधक समुदाय उसी प्रकार अनुभूति कर रहा था, जैसे कि भुशुण्डि एवं गरुड़ के संवाद रूपी सत्संग में पक्षिराज की स्थिति थी। तुलसी बाबा ने लिखा है कि–

सुनि भुसुंडि के वचन सुहाए।
हरषित खगपति पंख फुलाए।।
नयन नीर मन अति हरषाना।
श्री रघुपति प्रताप उस आना।।

श्री भुशुण्डि जी की बात को सुनकर पक्षियों के सिरमौर श्री गरुड़ जी प्रसन्न होकर अपने पंखों को फुला लिया। अर्थात् गरुड़ जी पूरे रोमांच से भर गये। उनकी आँखों से प्रसन्नता के अश्रुपात होने लगा। मन बड़ा प्रसन्न हुआ। जब वे भगवान श्री राम के गुणों के गान को ऋषिवर के मुख से महिमा सुनी। भगवान की उस सुनी महिमा को वे हृदय में धारण कर लिये। भगवान की वह कौन सी भाव मयी बात को उन्होंने भुशुण्डि जी के मुख से सुना। देखें–

भाव वस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन।।

भगवान की वह महिमा है, जो अपने सुख को छोड़कर भक्त (प्रह्लाद आदि) की रक्षा करने करने चले आते हैं।

वे करुणा वरुणालय सुख के भण्डार, करुणा के धाम सदा अपने भक्तों के वश में होते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव ममता अर्थात् किसी भी नश्वर वस्तु में अत्यधिक प्रीति का न होना। यह प्रीति चाहे स्वार्थ से युक्त हो या परमार्थ। दूसरा मद अर्थात् अहंकार। व्यक्ति को सदैव अहंकार रहित होकर ही कार्य करना चाहिए या रहना चाहिए। क्योंकि नाशवान वस्तु के प्रति अहंकार कैसा। तीसरा मान अर्थात् सम्मान के प्रति भी लालायित नहीं होना चाहिए। सद्‌गुरुदेव के प्रत्येक कार्य इसी प्रकार होते थे। वे सदैव यही कहते रहते थे। भाई हम तो महाप्रभु के कलछी हैं। हलुवा तो उस पर प्रभु का है जो हम बाँट रहे हैं। ऐसा मान रहित अमानी कौन होगा।

अस्तु, साधक को सदैव इन तीनों से सदा सावधान होकर रहने की आवश्यकता है। जिससे जीवन में कठिनाई कम हो। सद्‌गुरु का संवल साधक को प्रेरित करेगा।

●●●

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मनुष्य जीवन की उपादेयता

—अशोक शर्मा, दिल्ली

प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा की तरफ चलना ही पड़ेगा, चाहे आज चले या अनेकों अनेक जन्मों के बाद। तो फिर देरी क्यों? इस मृत्युलोक में सौ बार या हजार बार, करोड़ों या श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार अनेक बार जन्म लेने के बाद जीव को संचित पुण्य के प्रभाव से मानव योनि प्राप्त होती है। यह मानव योनि मोक्ष प्राप्त हेतु साधना के लिए प्रथम सीढ़ी है।

दुर्लभो मानुषो जन्म

चौरासी लाख योनियों में स्थित जीवात्माओं को बिना मानव योनि मिले तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता, अतः इस दुर्लभ योनि को प्राप्त करके जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं कर लेता उससे बढ़कर मूढ़ इस जगत में दूसरा कौन हो सकता है?

इदं शरीरं खलु धर्म साधनम्

कोई भी कर्म शरीर के बिना संभव नहीं है। अतः शरीर रूपी साधन की रक्षा करते हुए पुण्य कर्म करना चाहिए। शरीर की रक्षा धर्म के लिए, धर्म की रक्षा ज्ञान के लिए, ज्ञान की रक्षा ध्यान योग के लिए तथा ध्यान योग का अभ्यास योग की सिद्धि के लिए होता है।

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।

(योग दर्शन)

यदि हम स्वयं ही अहितकारी कार्यों से अपने को दूर नहीं कर सकते तो अन्य कोई दूसरा कौन हितकारी होगा जो आत्मा को सुख प्रदान करेगा। अतः मनुष्य को आत्मकल्याण हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानंमवसादयेत्।
आत्मैव आत्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्ततात्मैव शत्रुवत्।

(श्लोक 5 व 6 श्रीमद्भगवदगीता अध्याय 6)

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा अपना (संसार समुद्र से) उद्धार करे (और) अपने को अधोगति में न डाले क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है, और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बरतता है।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्ण धारणं।

मयानुकूलेन नमस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

ग्यारहवें स्कन्ध में श्रीमद् भागवत पुराण में भगवान श्री कृष्ण ने अपने श्रीमुख से कहा है कि जिस पुण्य कर्मा जीव को अत्यन्त दुर्लभ स्वस्थ मानव शरीर जो कि भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका के समान है, सुलभता से मिल जाए और फिर कर्णधार पूज्य गुरुदेव सिद्धयोग के दाता मिल जाएं। अनुकूल वायु के रूप में ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाए फिर भी यदि वह मनुष्य संसार को तरने का प्रयास नहीं करता है तो वह एक प्रकार का आत्म हत्यारा है।

जैसे फूटे हुए घड़े का जल धीरे-धीरे बह जाता है उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती जाती है। जब तक यह शरीर स्वस्थ है तब तक ही तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए सम्यक प्रयत्न किया जा सकता है। इसमें भी आधा निद्रा तथा आलस्य में चला जाता है। इसके साथ कितना ही समय बाल्यावस्था, रुग्णावस्था, वृद्धावस्था एवं अन्य दुखों में व्यतीत हो जाता है। इसके बाद जो थोड़ा बच जाता है उसे निष्फल न चला जाए, इसके लिए प्रयास करना चाहिए।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्तप वयमेव तप्ता।

कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।

(भर्तृहरि शतक)

अपने हित को न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है

वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। अज्ञान से मोहित होकर प्राणी अपने शरीर, धन एवं स्त्री आदि में अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धा काम क्रोध परायणाः। ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान।।
इदमद्यमयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्। इदमस्तीदपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि। ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवानसुखी।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशोमया। यक्षे दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः। यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।
अहंकार बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। मामात्म परदेहेषु प्रद्विश्यन्तोऽभ्यसूयकाः।।
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमांगतिम्।।

(श्लोक 12 से 20 अध्याय 16 श्रीमद् भगवदगीता)

अर्थात् आशा की सैकड़ों फांसियों से बंधे हुए मनुष्य काम क्रोध के परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों का संग्रह करने की चेष्टा करते रहते हैं और वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूंगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जाएगा तथा वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया है और उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूंगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ, मैं सब सिद्धियों से युक्त हूँ और बलवान तथा सुखी हूँ तथा मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ और मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा और आमोद प्रमोद करूंगा, इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाले तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले मोह रूप जाल से समावृत और विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त आसुरी संपदा से सम्पन्न लोग महान अपवित्र नरक में गिरते हैं तथा वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त होकर केवल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्र विधि रहित यजन किया करते हैं तथा वे अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादि के परायण और दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ

अन्तरयामी से द्वेष करने वाले होते हैं। ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार–बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ अतः हे अर्जुन वे मूढ मुझको न प्राप्त होकर जन्म जन्मों में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं। फिर उससे भी अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं।

अतः व्यक्ति को संसार में बढ़ी हुई आसक्ति का रुख मोड़कर परमात्मा की तरफ उन्मुख होना चाहिए और मृत्यु से पूर्व गुरुनिष्ठ होकर योग साधना करनी चाहिए। योग साधन भी है और साध्य भी है।

नाशवान संसार से चित को दीजिए मोड़,
बहिर्मुखी प्रवाह से प्रभुजी अन्तर को दीजिए जोड़।

श्रीमद् भगवदगीता के छठे अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा दी–

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अतः मनुष्य को चाहिए कि–

यावत्स्वस्थमिदंदेहं यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् मरणान्ते किं करिष्यति।।

अर्थात् जब तक शरीर स्वस्थ है, मौत की घड़ी दूर है तब तक मनुष्य को अपना कल्याण कर लेना चाहिए। मृत्यु सामने आ जाने पर कुछ भी नहीं हो सकेगा।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किचं जगत्यां जगत
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्

अर्थात्

इस जग में जो भी कुछ है वह सब परमात्मा द्वारा परिव्याप्त है। अतः त्याग के द्वारा तू सब का उपभोग कर दूसरों की सम्पत्ति के प्रति लोभ मत कर।

–ईशोपनिषद्

तंगदस्ती-गरीबी

-डा. पं. रामगोपाल द्विवेदी कव्वाल (मण्डल कानपुर)

एक न एक शम्मां अंधेरे में जलाये रखिये
सुबह होने को है माहौल बनाये रखिये।

मैं जवानी की कड़ी धूप में जल जाऊंगा
अपनी जुल्फें मेरे कांधे पे गिराये रखिये।

राज खुल जाये न कहीं साकी की तंगदस्ती का
जाम खाली ही सही होंठों से लगाये रखिये।

क्या खबर है वह किस राह गुजर से गुजरें
हर गुजर गाह को फूलों से सजाये रखिये।

यूं तो मैं आपके हर जुल्म गवारा कर लूँ
शर्त ये है, कि मुझे अपना बनाये रखिये।

एलर्जी विशेषज्ञ

जो कि हर प्रकार की एलर्जी, दमा, श्वास, खांसी, जुकाम, साइनस, जोड़दर्द, हृद दर्द, स्नोफीलिया रोग का इलाज पूज्य गुरुदेव जी की कृपा से गारंटी से किया करते हैं।

डॉ. पं. रामगोपाल द्विवेदी

अन्तर्राष्ट्रीय कव्वाल एवं एलर्जी विशेषज्ञ

पूज्य गुरुदेव जी के चरणों में अर्पित

डॉ. पं. रामगोपाल द्विवेदी (अंतर्राष्ट्रीय कव्वाल)

तेरी नजर से दिल को सुकूँ है करार है
तेरे करम से मेरे चमन में बहार है
बंदा गुनहगार है कुछ इसमें शक नहीं
तेरी निगाहे लुत्फ का उम्मीदवार है
ये दुनिया समझ रही है कि मेरा कोई भी नहीं
मुझको यकीन है कि मेरा परवरदिगार है।

यारो मुझे गरीब न समझो
मैं कोई गरीब नहीं
गरीब वो है जो गुरुदेव के करीब नहीं
मेरे हाथ में है मेरे गुरुदेव का दामन
हमसे बढ़कर कोई खुश नसीब नहीं

जय गुरुदेव की !

शोक समाचार

गुरु देव नमः !

सूचित किया जाता है कि मेरी पत्नी विद्यादेवी का 9 जुलाई को स्वर्गवास हो गया है वह पूज्य गुरुदेव महाराज का नाम लेती-लेती गुरुदेव को प्यारी हमेशा के लिए हो गयीं।

—डॉ. पं. रामगोपाल द्विवेदी
अंतर्राष्ट्रीय कव्वाल (कानपुर मण्डल)
(एलर्जी विशेषज्ञ)
फोन. 9450156579, 9936481460

योगसिद्धियाँ और उनकी प्राप्ति

श्री अमीरचन्द्र शास्त्री, साहित्याचार्य

हमारे शरीर पंच कोशात्मक हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पाँच कोश हैं। योग दर्शन में योग साधना के अधिकार की प्राप्ति के लिए पाँच यम कहे गये हैं–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह एवं पाँच ही नियम कहे गये हैं–तप, स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और ईश्वर प्रणिधान। इन्हीं दस नियमों की रूपान्तर में भगवान् मनु ने भी चर्चा की है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

यमनियमों या इन दस धर्म–लक्षणों के द्वारा पवित्र हुए मन से साधक योग मार्ग में अग्रसर होता है। सर्वप्रथम आसन के द्वारा अन्नमय कोश को शुद्ध और सिद्ध करता है फिर प्राणायाम द्वारा प्राणायाम कोष को, प्रत्याहार द्वारा मनोमय कोश को, धारणा द्वारा विज्ञानमय कोश को एवं ध्यान द्वारा आनन्दमय कोश को शुद्ध और सिद्ध करके आठवें साधन समाधि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है।

योग साधना द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार परमसिद्धि या संसिद्धि कहलाता है किन्तु इस संसिद्धि की प्राप्ति के मार्ग में अनेक सिद्धियाँ और भी आती हैं, यह उनका स्वभाव है। कोई साधक चाहे या न चाहे, ये सिद्धियाँ उसे वरण करती ही हैं। इनके इस प्रकार अनचाहे भी आ जाने से साधक को विश्वास होता है कि वह योग–मार्ग पर ठीक–ठीक प्रगति कर रहा है।

कभी–कभी दुर्बल साधक इन सिद्धियों के चक्र में ही पड़ा रह जाता है। तभी भगवान् पतंजलि ने लिखा है कि–

ते समाध्युपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।।

ये सभी फलविशेष समाधि की प्रगति में विघ्न हैं क्योंकि इन्हें प्राप्त करने पर तथाकथित साधकों के मन में हर्ष और अहंकार आदि भावों का उदय हो जाता है जिनसे समाधि शिथिल हो जाती है किन्तु समाधि के विपरीत व्युत्थान अवस्था या व्यवहारदशा में ये फल–विशेष सिद्धियाँ कहे जाते हैं। वैसे तो ये सिद्धियाँ अणिमा, महिमा, लधिमा, गरिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व नाम से आठ प्रकार की हैं और निस्तरङ्गता, दूर श्रवण दर्शन, मनोजवता, कामरूपता, परकाय प्रवेश, स्वेच्छा मृत्युता देवताओं के साथ क्रीड़ानुदर्शन, यथा सङ्कल्पसिद्धि, आज्ञा की अनुल्हाद्धनीयता, अप्रतिहत गति, त्रिकालज्ञता, निर्द्वन्द्वता, पर चित्त परिज्ञान, अग्नि सूर्य जल तथा विषादि का प्रतिष्टम्भ, और अपराजय नाम से अठारह प्रकार की हैं। जब साधक उन–उन ध्येयों में संयम कर लेता है तब उसे ये सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के तीन अन्तरंग साधन यदि एक ध्येय में सिद्ध हो जाएँ तो वह स्थिति संयम कहलाती है। यह संयम ही इन सिद्धियों का मूल है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में ऐसे ध्येयों का निर्देश करते हुए उक्त सिद्धियों की प्राप्ति का विवरण

दिया है। श्री मद्भागवत के एकादश स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में भी इनकी व्याख्या की गई है। हम यहाँ पर दोनों दृष्टियों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

पातञ्जल योग दर्शन में सिद्धियों का विवरण विभूतिपाद में दिया गया है। प्रारम्भ में धारणा, ध्यान और समाधि की परिभाषाएँ लिखी हैं। चित्त का एक देश या लक्ष्य में बन्धन धारणा, उसी की प्रतीति में चित्त की एकतानता ध्यान और केवल उसी ध्येय की प्रतीति में स्वरूप शून्यता समाधि कहलाती है। यदि एक ही ध्येय–विषय में यह तीनों प्रवृत्त हों तो वह स्थिति संयम कही जाती है। संयम के साथ आत्म्य कर लेना संयम का जय कहलाता है, इससे प्रज्ञा या विवेकख्याति का आलोक प्राप्त होता है अर्थात् प्रज्ञा ज्ञेय को प्रकाशित करने लगती है।

इसी संयम का स्थूल, सूक्ष्म अवलम्बनों के भेद से भिन्न–भिन्न चित्त वृत्तियों में विनियोग करने से फल विशेषों की या सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

जब व्युत्थान संस्कार दब जाते हैं और निरोध संस्कार उभर आते हैं तो उसे निरोध परिणाम कहते हैं, इससे विक्षेप दूर हो जाने से चित्त प्रशान्तव ही हो जाता है। ऐसे ही जब चित्त की सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय हो जाता है तो उसे समाधि परिणाम कहते हैं, प्रशान्तवाहिता से चित्त शान्त कहलाता है और एकाग्रतोदय से उदित, शान्त और उदित दोनों अवस्थाओं में एक रूप का आलम्बन होना एकाग्रतापरिणाम कहलाता है। चित्त के इन तीनों परिणामों के जैसे क्रमशः स्थूल सूक्ष्म भूतों और इन्द्रियों में धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम समझ लेने चाहिए।

चित्त के उक्त तीनों परिणामों में संयम करने से अतीत और अनागत (भूत और भविष्य) का ज्ञान प्राप्त होता है। शब्द, अर्थ और उनकी प्रतीति तीनों में इतरेतराध्यास को सङ्कर कहते हैं जो कि व्यवहार में होता है। यदि शब्द के वाचकत्व, अर्थ के वाच्यत्व और ज्ञान के प्रकाशकत्व का प्रविभाग करके उसमें संयम किया जाये तो साधक को सभी जीवों के शब्दों (आवाजों) का अर्थ ज्ञात हो जाता है; वह जान जाता है कि कौन पशु, पक्षी या सरीसृप क्या कह रहा है।

चित्त के वासना रूप संस्कारों का चाहे वे स्मृति मात्र को उत्पन्न करने वाले हों या जाति, आयु और भोग रूप में कर्मविपाक के कारण हों, साक्षात्कार करने से पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त होता है। मुखराग आदि चिह्नों ने प्रतीत हुए किसी के चित्त में संयम करने से उसके चित्त का ज्ञान अर्थात् परचित्त, ज्ञान नामक सिद्धि प्राप्त होता है।

शरीर के रूप में संयम करने से रूप की चक्षुर्ग्राह्य रूपा शक्ति स्तम्भित हो जाती है जिससे उस रूप के साथ किसी के भी चक्षुओं के प्रकाश का संयोग नहीं हो पाता अतः योगी को अन्तर्धान सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार शब्दादि गुणों में संयम करने से शब्दादिका भी अन्तर्धान हो जाता है।

कर्म दो प्रकार के हैं कुछ का फल भोगना प्रारम्भ हो चुका है कुछ का अभी फलभोग नहीं हुआ इन दोनों प्रकार के कर्मों में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है कि मेरा शरीर कब कहाँ कैसे छूटेगा। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक उपद्रवों द्वारा भी अपनी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

साधारणतया हम सुखी के प्रति ईर्ष्या, दुःखी के प्रति जुगुप्सा, पुण्यात्मा के प्रति असूया और पापात्मा के प्रति द्वेष करते हैं यह चारों चित्त कालुष्य हैं इन्हें हटाकर इनके स्थान पर क्रमशः मैत्री,

करुणा, मुदिता और उपेक्षा (निकट जाकर परिस्थितियों का ईक्षण करना) यह वृत्तियाँ बसानी चाहिए। जब साधक इन मैत्री आदि वृत्तियों में संयम करता है तो उसमें इनके बलों का उदय हो जाता है और वह सब की मैत्री आदि वृत्तियों को प्राप्त कर लेता है।

हाथी आदि बलवान प्राणियों के बल आदि पर संयम करने से उन–उन प्राणियों के जैसे बल आदि योगी को प्राप्त हो जाते हैं। प्रवृत्ति या ज्योतिष्मती के सात्विक प्रकाश से विषयों को भावित करने से सूक्ष्म विषय, व्यवहितविषय और दूरस्थ विषय का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सूर्य में संयम से भूर्भुवः स्वः आदि सातों लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है। चन्द्र में संयम करने से तारामण्डल का ज्ञान एवं ध्रुव में संयम करने से तारा मण्डल का गतिका ज्ञान प्राप्त होता है।

नाभि में जो षोडशार चक्र है उसमें संयम करने से शरीर रचना का ज्ञान प्राप्त होता है। कण्ठ–कूप में संयम से भूख, प्यास की निवृत्ति और कण्ठकूप से नीचे की कूर्म नाड़ी में संयम करने से शरीर की स्थिरता प्राप्त होती है जहाँ इसे कोई हिला भी नहीं सकता।

मूर्धा या ब्रह्म रन्ध्र में जो ज्योति है उसमें संयम करने से पृथ्वी और आकाश में विचरने वाले सिद्धपुरुषों का दर्शन प्राप्त होता है।

1961 में, मैं स्वामी व्यासदेव जी के पास योग निकेतन में साधना के लिए सम्मिलित हुआ था, उनकी आज्ञा से एक दिन मैंने ध्यानकाल का अपना अनुभव उनके प्रति निवेदन कर दिया, स्वामी जी बोले–शास्त्रीजी अकेले–अकेले आनन्द लेते हो कभी संकल्प करो कि यह आनन्द अमुक व्यक्ति को भी प्राप्त हो। उनके आदेशानुसार दूसरे दिन मैंने एक शर्माजी के लिए वैसा संकल्प किया। अभ्यास के बाद उस दिन स्वामी जी ने शर्माजी से ही पूछा क्या अनुभव हुआ? शर्माजी ने कहा मैं तो राधा कृष्ण आदि को नहीं मानता फिर वे मेरे ध्यान में क्यों आये तब स्वामीजी ने इसी सिद्धि का उल्लेख करते हुए कहा–

'मूर्ध ज्योति में संयम करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है। यदि तुम राधाकृष्ण को भगवद्रूप नहीं मानते तो योगीश्वर या सिद्ध पुरुष तो मानते ही हो।'

बिना किसी निमित्त के केवल मन में उत्पन्न होने वाले अविज्ञवादी और प्रथम उत्पन्न हो रहे ज्ञान को प्रतिभा कहते हैं। प्रतिभा में संयम करने से 'प्रातिभ' अर्थात् विवेकख्याति का पूर्व विभावक ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे सूर्योदय से पूर्व सूर्य की प्रभा। इस प्रातिभ ज्ञान से प्रतिभाशाली व्यक्ति बिना किसी संयम के भी सब कुछ जान जाता है।

हृदय में संयम करने से अपने और दूसरे के चित्त का ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् अपने चित्त की सुप्त लुप्त वासनाओं को और दूसरे के चित्त के रागादियों को जान लेता है।

सत्व और पुरुष भोग्य और भोक्ता होने के कारण एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं किन्तु इनमें भेद की प्रतीति न होने से सुख दुःखादि का भोग प्राप्त है इन दोनों के परार्थ और स्वार्थ होने को संयम करने से पुरुष (आत्मा) स्वावलम्बन ज्ञान को प्राप्त करता है।

इसी संयम से पूर्वोक्त प्रातिभ ज्ञान, श्रावण ज्ञान वेदना या स्पर्शेन्द्रिय ज्ञान–आदर्श या चक्षुरिन्द्रिय ज्ञान आस्वाद या रसनेन्द्रिय ज्ञान, और वार्ता या गन्धेन्द्रिय ज्ञान सामान्य की अपेक्षा प्रकृष्टतर रूप में प्राप्त होते हैं।

समाधि वश बन्धन के कारण धर्मा धर्म अति शिथिल हो जाते हैं तब साधक चित्त के इन्द्रियों द्वारा विषयों की ओर बढ़ने के ज्ञान से पर शरीर प्रवेश सिद्धि को प्राप्त करता है। उदान नामक प्राणवायु को प्राणायामादि द्वारा जीत कर योगी जल पर, कीचड़ पर और काँटे आदियों पर असंग रूप से चल जाता है और उनमें डुबा दिये जाने पर भी निकल आता है। ऐसे ही समान वायु को जीत कर योगी अग्नि के समान तेज से प्रज्ज्वलित हो उठता है।

श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध पर संयम से दिव्य श्रवण शक्ति शरीर और आकाश के सम्बन्ध पर संयम से रुई जैसा हलकापन और आकाश मन रूप सिद्धि को प्राप्त करता है। न जाने दी गई चित्त वृत्ति महाविदेहा कहलाती है उससे चित्त के प्रकाश पर के आवरण क्लेश कर्मादि का नाश हो जाता है। पृथ्व्यादि पंच महाभूतों के स्थूलत्व गन्धादिमत्व, गन्धतन्मात्रादि सूक्ष्मत्व, प्रकाश प्रवृत्ति स्थिति रूप गुण और भोगापवर्गादि सम्पादन रूप अर्थत्व में संयम करने से उन पर जय प्राप्त होती है। यह सभी पदार्थ उसके अनुगायी हो जाते हैं।

इस भूत जय से ही योगी को अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कायसम्पत् और शरीर धर्म रूपादियों का अनभिधात या अनाश प्राप्त होता है। रूप, बल, लावण्य से युक्त वज्र–सा शरीर होना कायसम्पत् कहलाता है। इन्द्रियों की विषयाभिमुखी वृत्ति, उनके प्रकाशकत्व, अहंकार, सम्बन्ध और प्रयोजन में संयम करने से इन्द्रिय–जय–वश्येन्द्रियता प्राप्त होती है। इन्द्रिय जय से मनो जवित्व–मन के समान वेगशाली होना, इन्द्रिय भाव और प्रधान जय या सर्ववशित्व प्राप्त होते हैं। बुद्धि से आत्मा की अन्यताख्याति में संयम से सब भावों पर अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञता सिद्धि प्राप्त होती है।

इन सिद्धियों के प्रति भी वैराग्य होने पर रागादि दोषों के बीज अविद्या आदि का क्षय होता है और तब आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति रूप मोक्ष प्राप्त होता है।

इन सिद्धियों के स्वामी भूतदेवता योगी को अनेक प्रकार के भोगों के लिए उपनिमन्त्रित करते हैं किन्तु विवेकशील योगी न तो उनमें सक्त होता है और न ही अभिमान करता है क्योंकि संग और स्मय से फिर अनिष्ट स्थिति आ सकती है। काल के सूक्ष्म अवयव क्षण और उनके क्रम संयम करने से विवेकात्मक ज्ञान प्राप्त होता है।

जातिगत, देशगत और स्वरूपगत भेदों से जिनमें भिन्नता प्रतीत नहीं होती ऐसे दो सदृश पदार्थों में संयम से उनके भेद की प्रतीति होने लगती है। अन्तिम भूमिका में संयम के ही प्रभाव से उत्पन्न ज्ञान तारक संसार सागर से पार करने वाला होता है। सर्वविषयक, सर्वथाविषयक और क्रम रहित होता है जिससे वह करतलामलकवत् सब कुछ एक साथ देखता है। सत्व और पुरुष की शुद्धि में समानता होने पर कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार पातञ्जल योग–दर्शन में वर्णित सिद्धियों का विवरण और उनकी प्राप्ति के उपाय भूत भिन्न–भिन्न संयमों–धारणा, ध्यान, समाधि के एक विषयकत्वों का यहाँ निरूपण किया गया है।

●●●

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा - मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा - मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

गुरुवक्त्रेस्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः
गुरुमूर्तेः सदाध्यानं यथा स्वैरिणियोषिता

ब्रह्म गुरु के मुख में स्थित हैं, गुरु के प्रसाद से प्राप्त होता है। जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री उपपति का ध्यान करती है उसी प्रकार गुरुमूर्ति का सदा ध्यान करें।

संस्थापक – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य र. (डॉ.) दासलाल शर्मा